DOI: 10.51220/hjssh.v8i1.6

Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 8 pp.49 -53, December, 2013, ISSN. 0975 - 9891

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना का सामाजिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ

राखी उपाध्याय

हिन्दी विभाग,

डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड

drrakhi_418@rediffmail.com

Received: 19-10-2013 **Revised: 26-11-2013** **Accepted: 05-12-2013**

ABSTRACT

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आलोचक के रूप में मध्यकाल की विवेचना के साथ ही तात्कालिकता के साथ परम्परा को जोड़ने का कार्य किया। हिन्दी साहित्य को उन्होंने ''भारतीय चिन्तन का स्वाभाविक विकास'' कहा। शुक्ल जी द्वारा आलोचना का जो वृत्त तैयार किया गया उसकी परिधि का विस्तार द्विवेजी जी ने किया। आदि काल के नामकरण, शक्ति के उदय का कारण तथा कबीर का मूल्यांकन करके उन्होंने आलोचना को विस्तृत आयाम दिया। द्विवेदी जी की समीक्षा दृष्टि ऐतिहासिक, सामाजिक है उनकी मानवतावादी भूमिका की दृष्टि उनके सर्जनात्मक साहित्य, आलोचनात्मक और निबन्ध साहित्य पर भी पड़ी है। संसार के स्त्री मनुष्यों को एक मानकर उनके मूल में मानव धर्म को सर्वोपरि माना। द्विवेदी जी के चिन्तन का 'मानव' 'अमूर्त' नहीं मूर्त है। यह 'मानव' भारत वर्ष का 'मानव' है। उनके मानवतावाद में 'हिन्दी', 'हिन्दू' और 'भारतवर्ष' है।

KEY WORDS-निबन्ध आलोचना,सामाजिक विमर्श,लोक,मानवतावादी दृष्टि,नवजागरण

पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के रचनाकर्म की रचनाधर्मिता के चिन्तन में मध्यकालीन विषय वस्तु केन्द्र में रही है। उपन्यास हो या इतिहास मध्यकाल से ही विषय जुड़ा है। मध्यकालीन कवि, मध्यकालीन साहित्य यहाँ तक कि ललित निबंधों में भी वे बार-बार मध्यकाल में विचरण करते हैं। लेकिन इन सबके बावजूद उनकी रचनादृष्टि आधुनिक है। चिन्तन पद्धति आधुनिक है। अपने अतीत से पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी को अत्यधिक लगाव है। यह लगाव उन्हें बार-बार मध्यकाल की ओर अग्रसर करता है। भविष्य की दिशा वे इसी अतीत और वर्तमान के सन्दर्भ में परिभाषित करते हैं। यह उनका काल बोध है।

द्विवेदी जी से पहले जब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना की जिम्मेदारी संभाली तब रचना 'काल' से स्वतंत्र एक स्वायत्त वस्तु थी। शुक्ल जी ने उसे कालबद्ध किया। रचना को तत्कालीन सामाजिक, ऐतिहासिक राजनीतिक साम्प्रदायिक और धार्मिक स्थितियों में रखकर उसका मूल्य निर्धारित करने की परिपाटी उन्होंने आरम्भ की। इस तरह आलोचना 'सामाजिक विमर्श' की भूमिका में सामने आई। इस कार्य को आगे बढ़ाने का कार्य द्विवेदी जी ने किया। आचार्य शुक्ल में तात्कालिकता का दबाव था, जिसके कारण उनके निष्कर्षों में अन्तर्विरोध पैदा हो गया। द्विवेदी जी ने इसको मध्यकाल की विवेचना के साथ ही महसूस किया। उन्होंने

तात्कालिकता क साथ परम्परा को जोड़ा। हिन्दी साहित्य को उन्होंने 'भारतीय चिन्ता का स्वाभाविक विकास' कहा। 'स्वाभाविक विकास' द्विवेदी की परम्परा या पूर्ववर्ती सन्दर्भ है। यह परम्परा उनकी दृष्टि है, जिसे वे 'पूर्ववर्ती' और पार्श्ववर्ती घटनाओं की अपेक्षा में देखना कहते हैं। इस तरह पं0 द्विवेदी की 'दूसरी परम्परा' न मान कर आचार्य शुक्ल की पहली परम्परा के विकास के रूप में देखना सही सन्दर्भ में समझना होगा। इसे दूसरी भाषा में कहें तो आचार्य शुक्ल ने आलोचना का जो वृत्त तैयार किया उसकी परिधि का पं0 द्विवेदी ने विस्तार किया।

पँ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी को दूसरी परम्परा के रूप में स्थापित करने के पीछे जो निम्न मुख्य कारण हैं-

1. आदिकाल का नामकरण
2. भक्ति के उदय का कारण
3. कबीर का मूल्यांकन

'आदिकाल' को आचार्य शुक्ल ने वीरगाथा काल कहा था। आचार्य शुक्ल के समय में उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर और 'औसतवाद' के परिणाम स्वरूप आचार्य शुक्ल ने यह नामकरण किया। द्विवेदी जी ने इसे भी स्वीकार किया। उनके समय तक कई रचनाएँ प्रकाश में आई। उन रचनाओं के आधार पर भी हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कोई प्रवृत्तिमूलक नामकरण नहीं किया। दूसरा बिन्दु अधिक महत्त्वपूर्ण है। भक्ति के उद्भव के कारण के सन्दर्भ में दोनों विद्वानों में मतभेद है। द्विवेदी भी भक्ति को परम्परा देखने की माँग करते हैं। इस तरह देखें तो परम्परा के योग से द्विवेदी जी आचार्य शुक्ल के आलोचना का विस्तार भर करते हैं। 'नामवर सिंह' की विश्लेषण पद्धति के आधार पर देखें तो जहाँ आचार्य शुक्ल के लोक में 'शिक्षित' और 'ब्राह्मण' आते हैं, तथा अशिक्षित और शूद्र बाहर रह जाते हैं वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'लोक' विस्तृत होकर 'शिक्षित से अशिक्षित तक' और ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक हिन्दू लोक हो जाता है। यह द्विवेदी के वृत्त का विस्तार है, लेकिन आचार्य शुक्ल से भिन्न द्विवेदी जी कोई नया वृत्त नहीं बनाते हैं। द्विवेदी जी के यहाँ 'लोक' शास्त्र की ऊंगली पकड़कर ही वैधता पाता है। इसलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को 'दूसरी परम्परा का आलोचक' कहने की बजाए शुक्ल जी की परम्परा में देखना ही तर्क संगत होगा।

डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं-'आचार्य द्विवेदी की समीक्षा दृष्टि मुख्यतः ऐतिहासिक सामाजिक है। यद्यपि सूर साहित्य की रचना भी इसी दृष्टि से की गई थी, किन्तु इस दृष्टि से लिखी गई महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'कबीर' है।[1] द्विवेदी जी किसी रचना या रचनाकार को उसके देश, काल और परिवेश से भिन्न करके नहीं देखते हैं। 'कबीर' इसका प्रमाण है। इसके अतिरिक्त वे कथानक रूढ़ियों और काव्य रूढ़ियों के माध्यम से रचना को देखने की बात करते हैं। इनके पीछे उनका आग्रह रचना को तत्कालीन मनुष्य की दृष्टि से देखने से सम्बन्धित है। यह रचना की कालबद्धता को प्रस्तावित करने वाली सामाजिक ऐतिहासिक दृष्टि है। उनकी यह दृष्टि उन्हें मानवतावाद की ओर ले जाती है। कई आलोचकों ने द्विवेदी जी के मानवतावाद को भी रेखांकित किया है। उनकी यह मानवतावादी भूमिका की छाप उनके सर्जनात्मक साहित्य पर पड़ी है। उनके कई

निबन्धों में तो सीधे-सीधे 'मानवतावाद' परिभाषित हुआ है। मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, 'साहित्य का प्रयोजन', 'लोककल्याण', 'मानवधर्म', 'प्रायश्चित की घड़ी' आदि ऐसे ही निबन्ध हैं। द्विवेदी जी को केवल इनके आधार पर ही 'मानवतावादी' कहना काफी नहीं होगा। हमें उनके मूल को जानने की आवश्यकता है कि उनके 'मानववाद का मानव' कौन है? बिना इसके हम द्विवेदी जी को सही सन्दर्भ में नहीं समझ सकते।

द्विवेदी जी ने मानववाद दृष्टि को इस प्रकार परिभाषित किया है। 'संसार के श्रेष्ठ मनीषियों ने घोषणा की है कि मनुष्य है और इसलिए मूल मानव धर्मवीर एक ही है।[2] और इसीलिए विभिन्न राष्ट्रीय इकाईयों में पाई जाने वाली संस्कृतियों में और धार्मिक सम्प्रदायों के विश्वासों में समन्वय करने की चर्चा चल पड़ी है। परन्तु समन्वय का अर्थ क्या है?[3] और समन्वयक का अर्थ यह है कि हम मनुष्य की मूल एकता को स्वीकार करें और उस विशाल मानववादी दृष्टि को अपनाए जो समग्र मनुष्य जाति को सामूहिक रूप से नाना प्रकार की कुशिक्षा, कुसंस्कार और अभावों के बंधन से मुक्त करके उसे जीवन की उच्चतर चरितार्थता की ओर ले जाने का प्रयास कर रही है।[4]

हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'मानव' इतना बड़ा वृत्त बना रहा है कि जाति, धर्म, सम्प्रदाय, राष्ट्र सबकी सीमाएँ उसमें अंतर्भूत होती हैं। यह एक ऐसा मानव है जिसमें मानवों के स्वार्थ की टकराहट, आपसी अंतर्विरोध, द्वंद्व, अस्मिता सबका शमन हो जाता है। इस 'मानव' का चेहरा हमारे सामने मूर्त नहीं होता। यह मानव इतना विस्तार पा लेता है कि 'विश्वात्मा' हो जाता है। द्विवेदी के चिन्तन का 'मानव' अमूर्त नहीं मूर्त है। यह 'मानव' भारत वर्ष का मानव है। द्विवेदी जी के शब्दों में 'सम्पूर्ण जगत की जन जागृति को देख कर जहाँ अपार आनन्द होता है, वहाँ दुश्चिता अपनी ओर देखकर रो रही है। क्या हम जन-जागृति को सहन करने योग्य शक्ति को पा सके हैं?'[5]

यह उद्धरण 'प्रायश्चित की घड़ी' से अवतरित किया गया है। विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद यह निबन्ध है। इस विश्वयुद्ध के पश्चात् द्विवेदी जी ने पूरे विश्व में जनता की शक्ति की बढ़ोत्तरी और साम्राज्यवादी शक्तियों की पराजय के रूप में देखा है। इसे ही द्विवेदी जी ने 'सम्पूर्ण जगत की जन जागृति घोषित किया है। यह जनजागृति उन्हें आनन्द देती है। लेकिन इसी जन जागृति के सामने अपने आपको अर्थात् 'भारतवर्ष को देखकर' चिन्ता होती है। यह मूर्त 'भारतवर्ष' उनकी चिन्ता के केन्द्र में है।

द्विवेदी जी ने इस मूर्त भारतवर्ष पर अपनी टिप्पणी दी है "इस देश में हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ब्राह्मण हैं, चांडाल हैं, धनी हैं, गरीब है-विरुद्ध संस्कारों और विरोधी स्वार्थों की विराट वाहिनी है। इसमें पग-पग पर गलत समझे जाने का अंदेशा है, प्रतिक्षण विरोधी स्वार्थों के संघर्ष में पिस जाने का डर है, संस्कारों और भावावेशों का शिकार हो जाने का अंदेशा है। परन्तु इन समस्त विरोधों संघातों से बड़ा और सबको छाप कर विराज रहा है मनुष्य।[6]" जैसे ही द्विवेदी जी का 'मानव' मूर्त होने लगा वैसे ही हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, चांडाल आदि चेहरे साफ होने लगे। चेहरा साफ होते ही धनी, गरीब का अन्तर दिखा उसमें संस्कारों और स्वार्थों की टकराहट दिखाई दी। संघर्ष का खतरा हुआ। इन संघर्षों और खतरों के सम्मुख आते ही द्विवेदी जी फिर से

उसे बड़े वाले 'मानव' के अन्दर समा जाते हैं। यह 'मानव' समस्त विरोधों और संघातों से बड़ा और ऊपर है। द्विवेदी जी के सम्पूर्ण चिन्तन में उनके 'मानव' का यह विस्तार और संकोचन लगातार चलता रहता है। द्विवेदी का एक निबन्ध 'मनुष्य की साहित्य का लक्ष्य है।' इसके आधार पर कई आलोचकों ने उन्हें मानववादी कहा है। निबंध की प्रारंभिक पंक्ति है- मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ।[7] आगे लिखते हैं 'आज नाना भाँति के संकीर्ण स्वार्थों ने मनुष्य को ऐसा अंधा बना दिया है कि जाति धर्म निर्विशेष मनुष्य के हित की बात सोचना असम्भव हो गया है।[8] 'जाति, धर्म निर्विशेष मनुष्य' मानो द्विवेदी जी का आदर्श मनुष्य है। इस विकट स्थिति में उनके अनुसार साहित्य की जिम्मेदारी यह है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार करें। इसे आगे बढ़ते ही द्विवेदी जी का 'देश' और 'मानव' दोनों मूर्त होने लगता है। 'इस विशाल देश में शिक्षा की मात्रा बहुत ही कम है।'[9] 'यह विशाल देश हिन्दुस्तान है और फिर हमने जिस भाषा के शब्द भण्डार को भरने का व्रत लिया है, उसका महत्त्व और भी है। वह भारतवर्ष के केन्द्रीय प्रदेशों की भाषा है, कई करोड़ आदमियों की ज्ञान पिपासा उसे शान्त करती है।'[10] द्विवेदी जी के चिन्तन का 'मानव' भारतवर्ष की कई करोड़ जनसंख्या हो जाता है। साथ ही वह भाषा हिन्दी है। द्विवेदी जी जब इस 'मानव' को और मूर्त करते हैं तो देखते हैं 'नगरों और गाँवों में फैला हुआ, सैंकड़ों जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त, अशिक्षा, दारिद्रय और रोग से पीड़ित मानव समाज आपके सामने उपस्थित है। भाषा और साहित्य की समस्या वस्तुतः उन्हीं की समस्या है क्यों ये इतने दीन दलित है? शताब्दियों की सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुलामी के भार से दबे हुए मनुष्य ही भाषा के प्रश्न हैं और संस्कृति तथा साहित्य की कसौटी है।'[11]

द्विवेदी जी के भारत वर्ष के आशय को भी समझना आवश्यक है। उन्हीं के शब्दों में 'इस देश में हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं और अन्य अनेक धर्मों के मानने वाले हैं, परन्तु मुख्य रूप से हिन्दू हैं।' हिन्दुओं में जातियों की कई तह हैं ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती हैं। इस प्रकार की जातियों से ही भारतीय जन समूह का संगठन हुआ है। ये ही लोग भारतवर्ष हैं। इन्हीं की प्रतीकात्मक संघमूर्ति का नाम 'भारत माता' है। भारत माता का जय जयकार वस्तुतः इन तहों को नष्ट कर देने का संकल्प हैं सम्भवतः थोड़े ही यह बात महसूस करते हैं।'[12]

द्विवेदी जी की मुसलमानों के विषय में धारणा को भी समझा जाना आवश्यक है। आजकल हम लोग हिन्दू मुसलमानों की मिलन समस्या से बुरी तरह चिन्तित हैं। निस्सन्देह यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। इस महान प्रश्न ने हमारे समस्त जीवन को गम्भीरता पूर्वक विचारने के लिए चुनौती दी है। हम अपनी भाषा के क्षेत्र में इस कठिन समस्या के हतबुद्धि हो रहे हैं। हमारे बड़े-बड़े विचारकों ने प्रत्येक क्षेत्र में सुलह का व्रत लिया है, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इससे भी कठोर समस्या का सामना हमें हिन्दू-हिन्दू मिलन के लिए ही करना है। अशांति के चिह्न अभी से प्रकट होने लगे हैं।[13]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'मानववाद' में 'हिन्दी', 'हिन्दू' और 'भारत वर्ष' है। मुसलमान, ईसाई और धर्म के लोग इसके बाहर हैं। उनकी भाषा संस्कृत बहुल हिन्दी है। इस चिन्तन के माध्यम से जो सक्रियता लाई जाएगी तो कैसा 'मनुष्य' बनेगा? यह सक्रियता किस उद्देष्य को सिद्ध करेगी? द्विवेदी जी लिखते हैं 'इस देश में हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, स्पृश्य है, अस्पृश्य हैं, संस्कृत हैं, फारसी हैं-विरोधों और संघर्षों की विराटवाहिनी है, पर सबसे ऊपर मनुष्य है-विरोधों को दिन रात याद करते रहने की अपेक्षा अपनी शक्ति का संबल लेकर उसकी सेवा में जुट जाना अच्छा है। जो भी भाषा आपके पास है, उससे बस मनुष्य को ऊपर उठाने का काम शुरु कर दीजिए। आपका उद्देश्य आपकी भाषा बना देगा।'

नवजागरण के प्रकाश में हजारी प्रसाद की आलोचना दृष्टि पनप रही थी। नवजागरण का एक स्वर जो साम्राज्यवाद का विरोधी था वह पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के यहाँ परम्परा और अतीत गौरव के रूप में मुखरित हुआ।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि पं0 हजारी द्विवेदी का आलोचनात्मक पाठ नवजागरण के प्रकाश में औपनिदेशिक का एक सम्पूर्ण व्याख्यान है। उन्होंने भारतीय परम्परा के स्वाभाविक विकास' का एक रैखिक, सतत् और एकायामी आख्यान गढ़ा है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी आलोचना: विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ-145
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-9, पृष्ठ-382
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-9, पृष्ठ-382
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-9, पृष्ठ-382-383
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भग-9, पृष्ठ-439
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-10,पृष्ठ-38
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भााग-10, पृष्ठ-24
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-10, पृष्ठ-24
9. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-10, पृष्ठ-25
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-10, पृष्ठ-25
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-10, पृष्ठ-25
12. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-9, पृष्ठ-440
13. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली, भाग-9, पृष्ठ-26